मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-12, अङ्क-7 जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व (वि.नि.सं. 2539) जुलाई 2013

धन्य-धन्य जिनवाणी माता.....

धन्य-धन्य जिनवाणी माता! शरण तुम्हारी आए।
परमागम का मन्थन करके, शिवपुर पथ पर धाए॥
माता! दर्शन तेरा रे भविक को आनन्द देता है,
हमारी नैया खेता है॥1॥

वस्तु कथंचित् नित्य-अनित्य, अनेकान्तमय शोभे।
परद्रव्यों से भिन्न सर्वथा, स्वचतुष्टमय शोभे॥
ऐसी वस्तु समझने से, चतुर्गति फेरा कटता है,
जगत् का फेरा मिटता है॥2॥

नय निश्चय-व्यवहार निरूपण, मोक्षमार्ग का करती।
वीतरागता ही मुक्ति पथ, शुभ व्यवहार उचरती॥
माता! तेरी सेवा से, मुक्ति का मारग खुलता है,
महामिथ्यातम धुलता है॥3॥

तेरे अँचल में चेतन की, दिव्य चेतना पाते।
तेरी अमृत लोरी क्या है, अनुभव की बरसातें॥
माता! तेरी वर्षा में, निजानन्द झरना झरता है,
अनुपमानन्द उछलता है॥4॥

नव-तत्त्वों मे छुपी हुई, जो ज्योति उसे बतलाती।
चिदानन्द चैतन्यराज का, दर्शन सदा कराती॥
माता! तेरे दर्शन से, निजातम दर्शन होता है,
सम्यग्दर्शन होता है॥5॥

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

प्रधान सम्पादक
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, मङ्गलायतन

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

भूतपूर्व मुख्य सलाहकार
स्व. साहू रमेशचन्द्र जैन, नयी दिल्ली

मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
श्री लक्ष्मीचन्द बी. शाह, लन्दन
श्री पवन जैन, अलीगढ़
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
श्रीमान् भीमजी भगवानजी शाह
हस्ते
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व

क्या / कहाँ

कारणपरमात्मा ही....	**3**
अरिहन्तदेव को पहिचानो	**9**
आँगन कैसा हो ?	**21**
शास्त्राभ्यास कैसे करना ?	**29**
समाचार-दर्शन	**30**

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा ***मङ्गलायतन*** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, मङ्गलायतन।

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व-जीवतत्त्व गतांक से आगे

कारणपरमात्मा ही वास्तविक आत्मा

(नियमसार गाथा 38 पर पूज्य गुरुदेवश्री का 30-01-1978 का प्रवचन)

यहाँ कहते हैं कि भगवान जो त्रिकाली स्वद्रव्य है, उसके अतिरिक्त **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने से....** यह कारण दिया है। जीवादि तत्त्व-पर्याय, यह पर्याय की बात है। **सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने से वास्तव में उपादेय नहीं है।** आहा...हा...! केवलज्ञान की पर्याय उपादेय नहीं है। केवलज्ञान है, उसकी तो यह बात नहीं, यह तो साधक-जिसे नय है, उसकी बात है। नय तो श्रुतज्ञानी को होते हैं। निश्चय और व्यवहार तो श्रुतज्ञान का भाग है। श्रुत प्रमाण है, वह अवयवी है और नय-निश्चय और व्यवहार उसके अवयव हैं। यहाँ केवली की बात नहीं, केवली तो पूर्ण हो गये परन्तु निश्चयवाले को केवलज्ञान की पर्याय भी बहिर्तत्त्व है, क्योंकि उसका लक्ष्य नहीं करना है। आहा...हा...! इसलिए उपादेय नहीं है।

परद्रव्य होने से वास्तव में उपादेय नहीं है। 'जीवादिसप्ततत्त्वजातं परद्रव्यत्वान्न ह्युपादेयम्।' यह संस्कृत है। आहा...हा...! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं। मुनिराज, भावलिङ्गी सन्त हैं। मुनि के भावलिङ्ग का लक्षण क्या? तीव्र आनन्द का स्वसंवेदन जिसकी मोहर-छाप है, वह भावलिङ्ग मुनि का है। द्रव्यलिङ्ग हो, पञ्च महाव्रत के विकल्प हों, नग्नपना होता है तो ऐसा ही होता है, दूसरा नहीं होता परन्तु यह वस्तुस्थिति नहीं है। आहा...हा...! यहाँ तो भावलिङ्ग को भी, परमात्मप्रकाश में कहा है कि भावलिङ्ग है, वह आत्मा नहीं; त्रिकाली की बात लेना है न?

यहाँ तो कहते हैं कि **परद्रव्य होने से...** ऐसा कारण लिया है। **वास्तव में उपादेय नहीं है।** आहा...हा...! अभी तो यहाँ (अज्ञानी को) व्यवहार, राग की क्रिया को सम्यग्दर्शन बिना उपादेय बनाना है। प्रभु! यह विरुद्ध है। तेरी वीतरागता उसमें उत्पन्न नहीं होगी। आहा...हा...! तू वीतरागस्वरूप

ही है। वीतरागस्वरूप है; इसलिए उसमें से वीतरागता उत्पन्न होगी। जिनस्वरूप ही है तो जिनस्वरूप परिणति पर्याय में प्रगट होगी। कोई चीज़ बाहर से नहीं आती। यहाँ कहा है कि जिनस्वरूप जो त्रिकाल है, उसका अनुभव हुआ, वह भी पर्याय है और उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं; इस कारण उपादेय नहीं। आहा...हा...! भाषा तो सादी है भगवान! भाषा कोई संस्कृत, व्याकरण और कठिन नहीं है। चार कक्षा पढ़ा हो तो ख्याल में आ जाये (ऐसी सरल है)। इसमें कहीं व्याकरण और संस्कृत की जरूरत नहीं है। आहा...हा...! अन्तर के संस्कार की जरूरत है।

अब कहते हैं—**सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है...** स्वयं मुनि है न? स्वयं मुनि है तो मुनि की भूमिका से बात ली है। मुनि कैसे होते हैं? अथवा मुनि कहते हैं कि हम कैसे हैं कि **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है...** वैराग्य अर्थात् पर से उदास... उदास... उदास... जिसका उदासीन—उत्+आसन उदासीन दृष्टि ध्रुव में पड़ी है। आहा...हा...! सम्यग्दृष्टि भी पर से उदास है परन्तु अभी तीन कषाय का भाव है, किन्तु मुनि को तो तीन कषाय का अभाव है, एक संज्वलन कषाय है परन्तु उससे भी उदास हैं। वह सहज स्वाभाविक वैराग्य किसे होता है? जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, उसे वैराग्य होता है। स्त्री, पुत्र, परिवार छोड़ दिया, इसलिए वैराग्य है, वह वैराग्य नहीं। पुण्य-पाप अधिकार में तो ऐसा कहा है कि वैराग्य उसे कहते हैं कि जो पुण्य और पाप से विरक्त हो। स्वभाव में रक्त हो, यह अस्ति और विरक्त होवे वह नास्ति, उसे वैराग्य कहते हैं। आहा...हा...!

परद्रव्य से जो परांमुख है.... मुनिराज तो परद्रव्य से परांमुख है। आहा...हा...! पहले परद्रव्य कहा न? जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने से वास्तव में उपादेय नहीं है, यह तो नास्ति से कहते हैं। अस्ति से तो कहा, वह परद्रव्य से परांमुख है। आहा...हा...! स्वद्रव्य में पर्याय के प्रकार / भेद पड़े, वह परद्रव्य होने के कारण उपादेय नहीं है; इसलिए

परद्रव्य से परांमुख है। धर्मात्मा सन्त सम्यग्दृष्टि हैं परन्तु वह निचले दर्जे की अनुभूति है। यह (मुनिराज की) उत्कृष्ट अनुभूति है। चौथे गुणस्थान में अनुभूति है, आनन्द का अंश है परन्तु अभी जो दशा पञ्चम की होनी चाहिए, वह नहीं और मुनि की होनी चाहिए, वह नहीं। इसलिए उग्र वैरागी तो इन्हें गिनने में आया है।

पहले तो सात तत्त्वों को परद्रव्य कहा। गजब बात करते हैं। आहा...हा...! मुनिराज तो उन्हें कहते हैं... अरे! सम्यग्दृष्टि भी उसे कहते हैं जो परद्रव्य से परांमुख है। स्वद्रव्य से सन्मुख और परद्रव्य से परांमुख है। आहा...हा...! इतनी शर्तें हैं। इतनी शर्तों से सम्यग्दर्शन और मुनिपना होता है।

इस संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय को यहाँ परद्रव्य कहकर, परद्रव्य से परांमुख हैं—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं प्रभु! मुनिराज अथवा सम्यग्दृष्टि जीव, परद्रव्य से परांमुख है। आहा...हा...! यह शुद्धभाव अधिकार है न? शुद्धभाव जो त्रिकाल ध्रुव, उसका लक्ष्य कभी उसमें से छूटता नहीं। आहा...हा...! चाहे तो शुभराग हो, अशुभराग हो परन्तु ध्रुव के ध्यान के ध्येय से उसका लक्ष्य कभी नहीं छूटता। आहा...हा...! इस कारण यहाँ कहते हैं कि मुनि को विशेष वैराग्य अर्थात् महावैराग्य होता है।

मुनिराज तो अन्तर प्रचुर आनन्द के वेदन में लवलीन हैं, अतीन्द्रिय आनन्द में (तल्लीन हैं); इसलिए परद्रव्य से तो परांमुख हैं। आहा...हा...! समयसार की 49 वीं गाथा में छह बोल आ गये हैं। अव्यक्त के छह बोल हैं, उनमें एक बोल में ऐसा कहा कि व्यक्त, अव्यक्त को... व्यक्त अर्थात् पर्याय और अव्यक्त अर्थात् द्रव्य, दोनों का एक साथ ज्ञान होने पर भी, व्यक्त को स्पर्श नहीं करता; इस कारण उसे अव्यक्त कहा जाता है। यह पाँचवाँ बोल है।

पाँच इन्द्रियों के फैलावरहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह है... समयसार की ३१ वीं गाथा में आया है न? **'जो इंदिये जिणित्ता'** इसकी व्याख्या

क्या ? संस्कृत टीका में ऐसा लिया है, यह द्रव्येन्द्रिय-जड़; भावेन्द्रिय—एक-एक विषय को जाननेवाली और भगवान की वाणी तथा स्त्री, कुटुम्ब और भगवान, वह इन्द्रिय है। तीनों को—द्रव्य इन्द्रिय, भावेन्द्रिय, इन्द्रिय के विषयभूत पदार्थ को इन्द्रिय कहा है। संस्कृत टीका में अमृतचन्द्राचार्य ने तीनों को इन्द्रिय कहा है। अनीन्द्रिय भगवान आत्मा है। आहा...हा... ! द्रव्य इन्द्रिय, भावेन्द्रिय तथा इन्द्रियों के विषय को जीतकर, अर्थात् उन तीनों का लक्ष्य छोड़कर **आत्मा को अधिक जानता है... 'जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।'** यह मूल पाठ है। आत्मा को (द्रव्य इन्द्रिय, भावेन्द्रिय, और इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों से) भिन्न जानता है, उसे जितेन्द्रिय कहा जाता है।

यहाँ कहते हैं कि मुनि तो सहज पर से परांमुख हैं, पाँच इन्द्रियों के फैलावरहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह है। मुनि को एक शरीर ही नहीं छूटता, इसके अतिरिक्त दूसरी कोई चीज नहीं होती। सच्चे भावलिङ्गी सन्त को वस्त्र का एक टुकड़ा भी नहीं होता, और वस्त्र का टुकड़ा रखकर मुनि है—ऐसा माने-मनवावे, वह निगोद जायेगा। यह बात सूत्रपाहुड़ की सोलहवीं गाथा में है। क्या यह ककड़ी के चोर को फाँसी की सज़ा—ऐसा कहा है ? ऐसा नहीं है। वस्तुत: उसकी नव तत्त्व में भूल है। वस्त्र का टुकड़ा रहे तो इतना अजीव का संयोग रहा, वह संयोग मुनि को होता ही नहीं; अत: अजीव तत्त्व की भूल हुई और वस्त्र ग्रहण का विकल्प है, वह मुनि की योग्यता में होता ही नहीं; अत: इस विकल्प के आस्रव की भूल है; और ऐसा विकल्प होवे तो भी, (मुनि के योग्य) संवर, निर्जरा होती है तो (इस) विकल्पवाले को मुनिपने की योग्यता नहीं, अत: संवर की भूल है। इस प्रकार नौ तत्त्व की भूल इसमें से निकलती है।

जो परम जिनयोगीश्वर हैं.... परम जिनयोगीश्वर—इतना शब्द प्रयोग किया है। मुनिराज, पर्याय में परम जिन हैं। परम जिनयोगीश्वर, अर्थात् परम जिनस्वरूप भगवान में परम योग जोड़ दिया है। द्रव्य का-ध्रुव का-

शुद्ध भाव का बहुत उग्र आश्रय लिया है। **स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है...** स्वद्रव्य जो परमपारिणामिकभाव, ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, सामान्यभाव, एकरूप भाव को तीक्ष्ण बुद्धि से पकड़ा है। अन्दर में पकड़ लिया है और बहुत स्थिरता हुई है।

अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाला भगवान आत्मा जो त्रिकाली, जो सम्यग्दर्शन का विषय है अथवा जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, वह तो अतीन्द्रिय स्वभाववाला है। आहा...हा...! सहज परमपारिणामिकभाव, जिसे छठवीं गाथा में ज्ञायक कहा, ग्यारहवीं गाथा में भूतार्थ कहा, उसे यहाँ परमपारिणामिकभाव कहा है। सूक्ष्म बात है भाई!

परमपारिणामिकभाव, अर्थात् जिसके चार भाव में उदय में तो कर्म का निमित्त आता है और तीन भाव में निमित्त के अभाव की अपेक्षा आती है; इसलिए वे अपेक्षित भाव हुए। यह निरपेक्षभाव त्रिकाल है, जिसे पारिणामिकभाव कहते हैं। यह पारिणामिकभाव स्वाभाविक शुद्ध परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है। आहा...हा...! जिसका परमपारिणामिक सहजस्वभाव अनादि अनन्त शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव है, अस्तिरूप है, विद्यमान चीज़ है।

वास्तव में ऐसा कारणपरमात्मा, वह वास्तव में आत्मा है। पर्याय, वह आत्मा है, इसका निषेध किया। कहते हैं कि जो अनादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाला शुद्ध सहज परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है—ऐसा कारणपरमात्मा, वह वास्तव में आत्मा है। पर्याय को आत्मा नहीं कहा—निर्णय करनेवाली पर्याय को आत्मा नहीं कहा, क्योंकि निर्णय करती है, वह पर्याय है और मुख्य को निश्चय करके, उसे (पर्याय को) अभूतार्थ कहा है। निर्णय पर्याय करती है।

दूसरे प्रकार से कहें तो नित्य का निर्णय अनित्य पर्याय करती है। नित्य का निर्णय, नित्यध्रुव कैसे करे? इस नित्य का निर्णय, अनित्य पर्याय करती है। अनित्य कहो या पर्याय कहो, परन्तु पर्याय का विषय क्या

आया ? कारणपरमात्मा। आहा...हा... ! सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान / आत्मज्ञान का विषय, वह वास्तव में आत्मा है। उसे ही आत्मा कहा है, वास्तव में आत्मा वही है; पर्याय को व्यवहार कहकर अनात्मा कहा है, क्योंकि पर्याय को अभूतार्थ कहकर, असत्यार्थ कहकर, वह अनात्मा है—ऐसा कहा है; और वस्तु जो त्रिकाल है, वही वास्तव में आत्मा है परन्तु वह वास्तव में आत्मा है, इसका निर्णय सम्यग्दर्शन की पर्याय और ज्ञान करते हैं। उस ज्ञान में कारणपरमात्मा आता नहीं, उस श्रद्धा की पर्याय में कारणपरमात्मा आता नहीं परन्तु कारणपरमात्मा की जितनी सामर्थ्य है, उतनी ज्ञान में और प्रतीति में आ जाती है। आहा...हा... ! क्या गम्भीर शैली !

प्रश्न : कारणपरमात्मा पर्याय को कर देता है।

उत्तर : नहीं... नहीं... नहीं... यह तो पहले कहा न ? पर्याय स्वयं ही परमात्मा के आदर / उपादेय में कर्ता है। पर्याय में षट्कारक पड़े हैं। यह द्रव्य है, वह कोई पर्याय देता नहीं। प्रभु ! बहुत सूक्ष्म है। अनन्त तीर्थङ्कर, अनन्त केवली, वर्तमान त्रिलोकनाथ महाविदेह में विराजमान हैं, वे भी यही कहते हैं। इन्द्रों की सभा और गणधरों की सभा में यह कहते हैं। भाई ! यह मार्ग कोई सूक्ष्म है।

प्रश्न : पर्याय तो द्रव्य की शरण में गयी तो द्रव्य कृपा नहीं करता ?

उत्तर : यह शरण लेने का अर्थ क्या ? ऐसे लक्ष्य करती है, वह पर्याय की ताकत से लक्ष्य करती है, द्रव्य की ताकत से नहीं।

सम्यग्दर्शन में किसी विद्वत्ता की आवश्यकता नहीं है। गृहस्थाश्रम में भी होता है, नारकी में भी होता है, सातवें नरक में मिथ्यात्व लेकर जाता है, और मिथ्यात्व लेकर निकलता है, (किसी को) बीच में समकित होता है। इतने प्रतिकूल संयोग में भी समकित हो जाता है, अपनी पर्याय में अपना परमात्मा, उसका आश्रय / उपादेय करके लिया, उस पर्याय को किसी पर की अपेक्षा नहीं है।

ऐसे निज परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कुछ उपादेय नहीं है।

[गुरु कहान दृष्टि महान, (गुजराती) भाग-5 में से साभार, सम्पादित अंश]

वीरशासन-जयन्ती के अवसर पर—

प्रवचनसार, गाथा 80 पर आधारित

सम्यग्दर्शन के लिये

अरिहन्तदेव को पहिचानो

अरिहन्तदेव अर्थात् शुद्ध आत्मा; जिसमें देह नहीं, जिसमें राग नहीं, जिसमें अपूर्णता नहीं—ऐसे शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा, वह अरिहन्त है; उन्हें पहचानने से देह से भिन्न, राग से भिन्न परिपूर्ण शुद्ध आत्मा अवश्य पहिचाना जाता है, अर्थात् सम्यग्दर्शन होता है और तभी से सच्चा जैनत्व होता है। इसलिए हे जीवो! तुम अरिहन्तदेव को पहिचानो। यहाँ श्रीगुरु उनकी पहचान कराते हैं।

☞ श्री अरिहन्त भगवान को नमस्कार हो

☞ **अरिहन्त भगवान अपने इष्टदेव हैं, इसलिए उनका स्वरूप भलीभाँति पहचानना चाहिए।**

☞ अरिहन्त भगवान का स्वरूप भलीभाँति पहचानने से आत्मा का सच्चा स्वरूप पहिचाना जाता है, क्योंकि अपने आत्मा का स्वरूप भी वास्तव में अरिहन्त भगवान जैसा ही है।

☞ **अनादि काल से आत्मा में जो मिथ्यात्वभाव है, वह अधर्म है। इस आत्मा का स्वभाव, अरिहन्त भगवान जैसा ही, पुण्य-पाप से रहित है। उसे चूककर, पुण्य-पाप को ही अपना स्वरूप मानना, वह मिथ्यात्व है। उस मिथ्यात्व का नाश कैसे हो और सम्यक्त्व कैसे प्रगट हो ? उसका उपाय कहते हैं।**

☞ —जो कोई जीव, अरिहन्त भगवान के आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय को भलीभाँति जानता है, वह जीव वास्तव में अपने आत्मा को जानता है और उसका मिथ्यात्वरूप भ्रम अवश्य नाश को प्राप्त होता है और शुद्ध सम्यक्त्व प्रगट होता है—अनादि के अधर्म का नाश करके अपूर्व धर्म प्रगट करने का यह उपाय है।

☞ निश्चय से अरिहन्त भगवान का और इस आत्मा का स्वभाव समान है, उस स्वभाव को जानने से सम्यग्दर्शन होता है, वह अपूर्व धर्म है। सम्यग्दर्शन के बिना तीन काल में धर्म नहीं होता।

☞ जो जीव, अरिहन्त भगवान का स्वरूप पहचानता है, वह जीव स्वभाव के आँगन में आया है; जो जीव अरिहन्त भगवान को नहीं पहचानता और शरीर की क्रिया से या राग से धर्म मानता है, वह तो स्वभाव के आँगन में भी नहीं आया है।

☞ अरिहन्त भगवान जैसे अपने आत्मा में द्रव्य-गुण-पर्याय को जो जीव नहीं जानता, वही रागादि को और शरीरादि की क्रिया को अपना स्वरूप मानता है परन्तु जो जीव, अरिहन्त भगवान जैसे अपने आत्मा को पहचानता है, उसे भेदज्ञान हो जाता है अर्थात् वह रागादि को अपना वास्तविक स्वरूप नहीं मानता तथा शरीरादि की क्रिया को अपनी नहीं मानता। रागरहित चैतन्यभाव से उसका अन्तर परिणमन हो जाता है।

☞ तीन लोक के नाथ तीर्थङ्कर भगवान कहते हैं कि 'मेरा और तेरा आत्मा एक ही जाति का है, दोनों की एक ही जाति है। जैसा मेरा स्वभाव है, वैसा तेरा स्वभाव है। हमको केवलज्ञान दशा प्रगट हुई, वह बाहर से नहीं प्रगट हुई किन्तु आत्मा में शक्ति है, उसमें से ही प्रगट हुई है; तेरे आत्मा में भी हमारे जैसी ही परिपूर्ण शक्ति है। हे जीव! तेरे आत्मा की शक्ति को पहचान तो तेरा मोह नाश हुए बिना नहीं रहेगा।'

☞ जैसे मोर के अण्डे में साढ़े तीन हाथ का रङ्ग-बिरङ्गा मोर होने का स्वभाव पड़ा है, इसलिए उसमें से मोर होता है; इसी प्रकार आत्मा में आनन्दमय केवलज्ञान कला प्रगट होने की शक्ति है, उसमें से केवलज्ञान खिलता है-जो ऐसी अन्तरशक्ति की प्रतीति करे, उसे सम्यग्दर्शन होकर अल्प काल में केवलज्ञान कला खिल जाती है।

-परन्तु-

☞ इस छोटे अण्डे में बड़ा रङ्ग-बिरङ्गी मोर कैसे होगा? —ऐसी

शङ्का करके यदि अण्डे को झंझोड़े तो उसका रस सूख जाता है और मोर नहीं होता; इसी प्रकार जो जीव, आत्मा के स्वभाव-सामर्थ्य का विश्वास करे नहीं और 'अभी आत्मा भगवान जैसा कैसे होगा?'—ऐसे स्वभाव में शङ्का करे तो उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता और मोह नहीं टलता।

☞ **मोर के छोटे अण्डे में मोर होने का स्वभाव है, वह स्पर्श-रस इत्यादि इन्द्रियों से नहीं दिखता परन्तु ज्ञान द्वारा ही ख्याल में आता है; इसी प्रकार आत्मा में केवलज्ञान होने का जो स्वभाव है, वह इन्द्रियों द्वारा, मन द्वारा या राग द्वारा भी ज्ञात नहीं होता परन्तु उन इन्द्रिय इत्यादि का अवलम्बन छोड़कर स्वभाव-सन्मुख झुके हुए अतीन्द्रिय ज्ञान से ही वह ज्ञात होता है।**

☞ जैसे दियासलाई के टोंप में अग्नि होने की सामर्थ्य है, वैसे चैतन्यमूर्ति आत्मा में केवलज्ञान ज्योति प्रगट होने की सामर्थ्य है। जैसे दियासलाई में अग्नि होने की सामर्थ्य है, वह आँख से नहीं दिखती परन्तु ज्ञान से ही ज्ञात होती है, वैसे आत्मा में केवलज्ञान होने की स्वभाव सामर्थ्य है, वह भी अतीन्द्रियज्ञान द्वारा ही ज्ञात होती है।

☞ **अपने ऐसे स्वभाव-सामर्थ्य की प्रतीति और अनुभव करे तो सम्यग्दर्शनरूप पहला धर्म होता है। ऐसे स्वभाव-सामर्थ्य की प्रतीति के बिना चाहे जितने शास्त्र पढ़ जाये, व्रत-उपवास करे, प्रतिमा ले, पूजा-भक्ति करे या द्रव्यलिंगी मुनि हो-चाहे जितना करे, तथापि उसे धर्म नहीं और यह करते-करते धर्म होता नहीं।**

☞ सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिये यह अलौकिक अधिकार है; यह अधिकार समझकर याद रखने जैसा है और अन्दर मन्थन करके आत्मा में परिणमन कराने जैसा है। अपने अन्तरस्वभाव में एकाग्रता से ही सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र प्रगट होते हैं।

☞ **जिसने अरिहन्त भगवान जैसे अपने आत्मा को मन द्वारा जान लिया, वह जीव, स्वभाव के आँगन में आया है परन्तु आँगन में आने के बाद अब अन्दर उतरकर स्वभाव का अनुभव करने में अनन्त अपूर्व पुरुषार्थ है।**

☞ जैसे बड़े राजा-महाराजा के महल के आँगन में आने के बाद फिर सीधा राजा के पास जाने के लिये हिम्मत चाहिए; उसी प्रकार चैतन्य भगवान के आँगन में आने के बाद अन्दर ढलकर चैतन्यस्वभाव का अनुभव करने में अनन्त पुरुषार्थ है; जो जीव वैसा अपूर्व पुरुषार्थ करे, उसे ही भगवान आत्मा का साक्षात्कार होता है-उसे ही सम्यग्दर्शन होता है। जो जीव, शुभविकल्प में अटक जाते हैं, उन्हें चैतन्य भगवान का साक्षात्कार नहीं होता-परन्तु यहाँ आँगन में अटकने की बात ही नहीं है; जो जीव आँगन में आया, वह अन्तर में जाकर अनुभव करे ही-ऐसी अप्रतिहतपने की ही यहाँ बात है।

☞ सम्यग्दर्शन के बिना धर्म नहीं होता; इसलिए यहाँ पहले ही सम्यग्दर्शन की विधि बतायी है। सम्यग्दर्शन की विधि में पुण्य या पाप नहीं। उपयोग को अन्तर्मुख करके त्रिकाली चैतन्यद्रव्य में एकाग्र करना, वही सम्यग्दर्शन की विधि है।

☞ देखो भाई! यही आत्मा के हित की बात है। यह समझ, पूर्व में अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी नहीं की है; जो ऐसी समझ करे, उसे भव का नाश हुए बिना नहीं रहता।

☞ आत्मा का यथार्थ स्वरूप समझने के अतिरिक्त, भले लाखों और करोड़ों रुपये एकत्रित हो तो भी उसमें आत्मा को क्या लाभ? आत्मा का लक्ष्य किये बिना, आत्मा के अनुभव की मूल्यवान घड़ी का लाभ नहीं मिलता।

☞ जिसने आत्मा का यथार्थ निर्णय किया, फिर उसे आहारादि हो और पुण्य-पाप के अमुक परिणाम भी होते हों, तथापि आत्मा का लक्ष्य नहीं छूटता—आत्मा का जो निर्णय किया है, वह किसी प्रसङ्ग में नहीं छूटता। प्रथम ऐसा निर्णय करना, वही करनेयोग्य है।

☞ स्वयं सच्चा समझे, वहाँ मिथ्यामान्यता स्वयमेव टल जाती है। जिसने आत्मस्वभाव को जाना, उसे मिथ्यामान्यता टल ही गयी। सच्चा समझे, उसे विपरीत मान्यता भी रहे-ऐसा नहीं होता।

☞ हे जीव! अरिहन्त भगवान जैसे तेरे आत्मा को तू जान—ऐसा कहा, उसमें इतना तो आ गया कि पात्र जीव को अरिहन्तदेव के अतिरिक्त सर्व कुदेवादि की मान्यता तो छूट ही गयी है।

— अरिहन्त भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर वहीं अटकता नहीं परन्तु अपने आत्मा की ओर ढलता है।

— द्रव्य-गुण और पर्याय से परिपूर्ण मेरा स्वरूप है; राग-द्वेष मेरा स्वरूप नहीं-ऐसा निर्णय करके, फिर पर्याय का लक्ष्य छोड़कर और गुणभेद का भी लक्ष्य छोड़कर, चिन्मात्र आत्मा को लक्ष्य में लेता है। इस प्रकार अकेले चिन्मात्र आत्मा का अनुभव करते ही सम्यग्दर्शन होता है और मोह टल जाता है।

☞ भगवान के दर्शन और भगवान का साक्षात्कार कैसे हो ?—उसकी यह बात है। भगवान कैसे हैं, वह पहचाने और मैं भी ऐसा ही भगवान हूँ—'जिन सो ही है आत्मा'—ऐसा पहचानकर उसी में लक्ष्य को एकाग्र करने से निर्विकल्प आनन्द का अनुभव होता है, वही भगवान का दर्शन है, वही आत्मसाक्षात्कार अथवा परमात्मा का साक्षात्कार है। 'आत्मा सो परमात्मा' इसलिए आत्मा का दर्शन ही परमात्मा का दर्शन है, वही स्वानुभव है, वही बोधिसमाधि है, वही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है; इसके अतिरिक्त भगवान में और अपने आत्मा में जो किञ्चित् भी अन्तर परमार्थ से मानता है, उसे भगवान का साक्षात्कार, भगवान से भेंट या भगवान के दर्शन नहीं होते।

☞ आत्मा को पहचानकर, उसका सम्यग्दर्शन करना, वह इस मनुष्य जीवन की सफलता है। आत्मा की पहचान के संस्कारसहित जहाँ जायेगा, वहाँ आत्मा की साधना चालू रखकर अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करेगा। परन्तु यदि जीवन में आत्मा की पहिचान के संस्कार नहीं डाले तो डोरे रहित सुई की तरह आत्मा भवभ्रमण में कहीं खो जायेगा। जैसे डोरा पिरोयी हुई सुई खोती नहीं, वैसे यदि आत्मा में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूपी डोरा पिरो ले तो आत्मा चौरासी के अवतार में भटकेगा नहीं।

☞ यह सम्यग्दर्शन के लिये अपूर्व बात है। जैसे व्यापार-धन्धे में या रसोई इत्यादि में ध्यान रखते हैं, वैसे यहाँ आत्मा की रुचि करके बराबर ध्यान रखना चाहिए। अन्तर में मिलान करके समझना चाहिए। माङ्गलिकरूप से यह अपूर्व बात है। 'यह कोई अपूर्व है, समझने जैसा है'—ऐसा उत्साह लाकर साठ मिनिट बराबर ध्यान रखकर सुने तो भी दूसरों से अलग प्रकार का पुण्य हो जाता है और आत्मा के लक्ष्य से अन्तर में समझकर इस भावरूप से परिणम जाये, उसे तो अनन्त काल में अप्राप्त ऐसे सम्यग्दर्शन का अपूर्व लाभ होता है। यह बात सुनना भी कठिन है और समझना, वह तो अभूतपूर्व है।

☞ सम्यग्दर्शन की अन्तर क्रिया ही धर्म की पहली क्रिया है। सम्यग्दर्शन स्वयं श्रद्धागुण की पवित्र क्रिया है और उसमें मिथ्यात्वादि अधर्म की क्रिया का अभाव है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के निर्मलभावरूप जो पर्याय परिणमति है, वही धर्म क्रिया है; वह क्रिया रागरहित है। राग हो, वह धर्म की क्रिया नहीं है। धर्मी जानता है कि मेरे स्वभाव के अनुभव में ज्ञान, दर्शन, आनन्द की निर्मल क्रिया होती है, उसमें मैं हूँ, परन्तु राग की क्रिया में मैं नहीं।

☞ द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने के पश्चात् अन्तर के अभेद चेतनमात्र स्वभाव का अनुभव करने में अलग ही प्रकार का पुरुषार्थ है, उस अन्तरक्रिया में स्वभाव का अपूर्व पुरुषार्थ है। अनादि के भव सागर का अन्त ऐसे अपूर्व पुरुषार्थ से ही होता है। यदि स्वभाव के अपूर्व पुरुषार्थ बिना ही भवसागर से तिरा जाता हो, तब तो सभी जीव मोक्ष में चले जाते!—परन्तु स्वभाव के अपूर्व प्रयत्न बिना यह समझ में आवे ऐसा कभी नहीं होता और यह समझे बिना कभी किसी जीव के परिभ्रमण का अन्त नहीं आता; इसलिए अन्तर की रुचि और धीरजपूर्वक स्वभाव समझने का उद्यम करना चाहिए।

☞ भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, सम्यग्दर्शन का अपूर्व उपाय बताते हुए भव्य जीव को कहते हैं कि हे भव्य! तू अरिहन्त भगवान के शुद्ध

द्रव्य-गुण-पर्याय को पहचान... वह पहचानने पर तुझे तेरे आत्मा का पता पड़ेगा कि मैं भी अरिहन्त की ही जाति का हूँ, अरिहन्त भगवान की पंक्ति में बैठूँ—ऐसा मेरा स्वभाव है। इस प्रकार आत्मस्वभाव को पहचानकर उसमें एकाग्र होने से अपूर्व सम्यग्दर्शन होगा।

☞ पहले में पहले क्या करना, उसकी यह बात है। अनादि के अज्ञानी जीव को छोटे में छोटा जैनधर्मी बनने अर्थात् अविरत सम्यग्दृष्टि होने की यह बात है। मुनि या श्रावक होने से पहले आत्मा की कैसी श्रद्धा होना चाहिए, उसकी यह बात है। इस सम्यक्श्रद्धारूपी भूमिका के बिना श्रावकपना या मुनिपना कभी सच्चा नहीं होता। अभी वस्तुस्वरूप क्या है, यह समझे बिना उतावला होकर बाह्य त्याग करने लगे और स्वयं को मुनिपना इत्यादि मान ले, उसे तो धर्म की विधि की अथवा धर्म के क्रम की खबर नहीं है।

☞ जिसने अन्तर में अपने आत्मस्वभाव का भान क्रिया है, उसे वह भान सदा वर्ता ही करता है। आत्मा के विचार में हो, तब ही सम्यग्दर्शन रहे और दूसरे विचार में हो, तब सम्यग्दर्शन चला जाये-ऐसा नहीं है। समकिती को शुभ-अशुभ उपयोग के समय भी आत्मभान विस्मृत नहीं होता, सम्यग्दर्शन छूटता नहीं तथा दूषित नहीं होता; प्रतिक्षण उसे सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान वर्ता ही करते हैं-आत्मा ही उसरूप परिणमन गया है। आत्मा का भान होने के पश्चात् उसे रटना नहीं पड़ता - याद नहीं रखना पड़ता, परन्तु आत्मा में उसका सहज परिणमन हो जाता है, नींद में भी आत्मभान विस्मृत नहीं होता। इस प्रकार धर्मी को चौबीसों घण्टे सम्यग्दर्शनरूप धर्म हुआ ही करता है। ऐसा आत्मभान प्रगट करना ही जीवन में सर्व प्रथम करनेयोग्य है।

☞ यह तो आत्मा की मुक्ति प्राप्त हो वैसी बात है। इसे समझने के लिये अन्तर में होश और उत्साह चाहिए। पैसे में सुख नहीं है, तथापि जिसे पैसे का प्रेम है, वह पैसा प्राप्त होने की बात कैसे होश से सुनता है! तो आत्मा को समझने के लिये अपूर्व उत्साह से आत्मा की गरजपूर्वक अभ्यास करना चाहिए। सतसमागम से परिचय किये बिना उतावल

से यह बात जम जाये, ऐसा नहीं है। यह तो मुझे करनेयोग्य है—ऐसे धीर होकर इस बात को पकड़ने योग्य है।

☞ अरिहन्त भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय का निर्णय, ज्ञान के अन्तर्मुखी पुरुषार्थ के द्वारा होता है और उसका निर्णय करने से आत्मा के वास्तविक स्वरूप की पहचान होकर सम्यग्दर्शन प्रगट होता है और मोह का क्षय होता है; इसलिए हे जीवो! पुरुषार्थ द्वारा अरिहन्त भगवान को पहचानो।

☞ जिस जीव ने अरिहन्त भगवान की परिपूर्ण सामर्थ्य को अपने ज्ञान में लिया, उसने अपने आत्मा में भी वैसी परिपूर्ण सामर्थ्य का स्वीकार किया और उससे कम का या विकार का निषेध किया।

☞ अरिहन्त भगवान में और इस आत्मा में निश्चय से अन्तर नहीं है, इसलिए जिसने अरिहन्त के आत्मा का वास्तविकस्वरूप जाना, उसे ऐसा लगता है कि अहो! मेरे आत्मा का वास्तविकस्वरूप भी ऐसा ही है; इसके अतिरिक्त दूसरे विपरीत भाव मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसा जानकर अपने आत्मा की ओर ढलने से उस जीव के मोह का नाश हो जाता है।

☞ अरिहन्त भगवान को वास्तव में जाना कब कहलाये? अरिहन्त भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय के साथ अपने आत्मा को मिलान कर, जैसा अरिहन्त का स्वभाव, वैसा ही मेरा स्वभाव—ऐसा यदि निर्णय करे, तो अरिहन्त भगवान को वास्तव में जाना कहा जाता है और इस प्रकार अरिहन्त भगवान को जाने, उसे सम्यग्दर्शन हुए बिना नहीं रहता।

☞ जिसने अरिहन्त भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय को लक्ष्य में लिया, उस ज्ञान में ऐसी सामर्थ्य है कि अपने आत्मा में से विकार और अपूर्णता का निषेध करके स्वभाव-सामर्थ्य को स्वीकारता है और मोह का क्षय करता है।

☞ जो जीव, अरिहन्त भगवान के आत्मा को भलीभाँति जानता है, वह जीव अपने चैतन्य-सामर्थ्य के सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्रगट करता है, अर्थात् अरिहन्त भगवान को जाननेवाला जीव, अरिहन्त का लघुनन्दन होता है।

☞ धर्मी जीव ने अपने हृदय में अरिहन्त भगवान को स्थापित किया है, उसके अन्तर में केवलज्ञान की महिमा उत्कीर्ण हो गयी है और ऐसा परम महिमावन्त केवलज्ञान प्रगट होने की सामर्थ्य मेरे आत्मा में भरी है—ऐसी उसे स्वसन्मुख प्रतीति वर्तती है।

☞ केवलज्ञान का यथार्थ निर्णय करने की सामर्थ्य, शुभ विकल्प में नहीं परन्तु ज्ञान में ही वह सामर्थ्य है। केवलज्ञान का यथार्थ निर्णय करनेवाला ज्ञान, अपने स्वभावसन्मुख हो जाता है।

☞ जो जीव, अरिहन्त भगवान के केवलज्ञान का निर्णय करे, वह जीव, राग को आत्मा का स्वरूप नहीं मानता, अर्थात् राग से धर्म होना नहीं मानता, क्योंकि केवलज्ञानी को राग नहीं है और जैसा केवलज्ञानी का स्वरूप है, वैसा ही अपना परमार्थ स्वरूप है।

☞ जो जीव मात्र अपनी कुलपरम्परा से ही अरिहन्तदेव को महान मानता है परन्तु अरिहन्त भगवान के जीव का क्या स्वरूप है ?—वह नहीं पहचानता, उसे मिथ्यात्व का अभाव नहीं होता और धर्म नहीं होता। इसलिए अरिहन्त भगवान के आत्मा का वास्तविक स्वरूप क्या है ?—वह पहचानना चाहिए। अरिहन्त भगवान के आत्मा का वास्तविक स्वरूप पहचाने, वह मिथ्यादृष्टि रहता ही नहीं।

जो जानता अरहन्त को गुण-द्रव्य अरु पर्ययेपने।
वह जीव जाने आत्म को उस मोहक्षय पावे अरे॥

☞ जिसे मोह का क्षय करना हो, उसे क्या करना ? अरिहन्त भगवान का आत्मा कैसा है, उनके गुणों की सामर्थ्य कैसी है और उनकी केवलज्ञानादि पर्याय का क्या स्वरूप है ?—यह निर्णय करना; यह निर्णय करने से अपने आत्मा का वास्तविक स्वरूप भी वैसा ही परिपूर्ण है—ऐसी सम्यक् प्रतीति होती है और मोह का नाश हो जाता है।

☞ यहाँ अरिहन्त भगवान इस आत्मा के ध्येयरूप-आदर्शरूप हैं। जैसे दर्पण में देखने से अपनी मुद्रा दिखती है, वैसे अरिहन्त भगवान इस आत्मा के दर्पण समान हैं; अरिहन्त भगवान का स्वरूप पहचानने

से आत्मा का परिपूर्णस्वरूप कैसा है, वह पहचाना जाता है। अरिहन्त भगवान को जो केवलज्ञानादि प्रगट हुए हैं, वह प्रगट होने की मेरे आत्मा में सामर्थ्य है और जो रागादि भाव, अरिहन्त भगवान के आत्मा में से टल गये हैं, वे आत्मा का वास्तविकस्वरूप नहीं है। इस प्रकार अरिहन्त भगवान को पहचानने से अपने स्वभाव-सामर्थ्य की प्रतीति होती है और विकारी भावों से भेदज्ञान होता है।

☞ आचार्यदेव कहते हैं कि भाई! हमें तुझे तेरा शुद्धस्वरूप बतलाना है; विकार या अपूर्णता तेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है; तेरा वास्तविक स्वरूप तो विकाररहित शुद्ध परिपूर्ण है, वह हमें दर्शाना है और उस शुद्ध आत्मस्वरूप के प्रतिबिम्ब समान श्री अरिहन्त भगवान हैं, क्योंकि वे सर्व प्रकार से शुद्ध हैं; इसलिए हे भाई! तू अरिहन्त भगवान के आत्मा को पहचान और तेरे आत्मा को भी वैसा ही जान।

☞ इस आत्मा को द्रव्य-गुण तो सदा ही शुद्ध है और पर्याय की शुद्धता नयी प्रगट करनी है। पर्याय की शुद्धता प्रगट करने के लिये द्रव्य-गुण और पर्याय की शुद्धता का स्वरूप कैसा है, वह जानना चाहिए। अरिहन्त भगवान का आत्मा द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों प्रकार से शुद्ध है, उनके स्वरूप को जानने पर, अपने शुद्धस्वभाव की प्रतीति होती है, और पर्याय में शुद्धता होने लगती है।

☞ अरिहन्त भगवान का आत्मा परिस्पष्ट है, सर्व प्रकार से स्पष्ट है, उन्हें जानने पर ऐसा होता है कि अहो! यह तो मेरे शुद्धस्वभाव का ही प्रतिबिम्ब है, मेरा स्वरूप ऐसा ही है-इस प्रकार यथार्थरूप से आत्मस्वभाव का भान होने पर, शुद्ध सम्यक् प्रगट होता है।

☞ अरिहन्त भगवान को राग का अत्यन्त अभाव होकर परिपूर्ण केवलज्ञान प्रगट हो गया है। उस केवलज्ञान में जो ज्ञात हुआ, वह बदलता नहीं—ऐसा निर्णय करने में भगवान के केवलज्ञान की प्रतीति आ जाती है और केवलज्ञान की प्रतीति करने पर अपना परिपूर्ण ज्ञान-सामर्थ्य कैसा है यह भी प्रतीति में आ जाता है और सम्यग्दर्शन

होता है। इस प्रकार केवलज्ञान का यथार्थ निर्णय, वह सम्यग्दर्शन का कारण है।

☞ अरिहन्त भगवान के निर्णय में केवलज्ञान का निर्णय आया, केवलज्ञान के निर्णय में आत्मा के ज्ञानस्वभाव का निर्णय आया और ज्ञानस्वभाव के निर्णय में केवलज्ञान-सन्मुख का अनन्त पुरुषार्थ आया।

☞ सर्वज्ञ परमात्मा अरिहन्त भगवान को जो जीव नहीं पहचानता, वह केवलज्ञान को नहीं पहचानता; और जो केवलज्ञान को नहीं पहचानता, वह आत्मा के ज्ञानस्वभाव को भी नहीं पहचानता; ज्ञानस्वभाव की पहचान बिना उसे कभी धर्म नहीं होता; इसलिए जिसे धर्म करना हो, उसे अरिहन्त भगवान के स्वरूप को भलीभाँति पहचानना चाहिए।

☞ अरिहन्त भगवान का और मेरा आत्मा निश्चय से समान है – ऐसा जो जीव पहचाने, उसे ऐसी निःशङ्कता हो जाती है कि जैसे अरिहन्त भगवान अपने पुरुषार्थ द्वारा मोह का क्षय करके पूर्णदशा को प्राप्त हुए; वैसे मैं भी मेरे पुरुषार्थ के जोर से मोह का क्षय करके पूर्णदशा प्राप्त करनेवाला हूँ। मोह की सेना पर विजय प्राप्त करने का उपाय मैंने प्राप्त किया है।

☞ सभी आत्मायें अरिहन्त जैसी ही हैं; अरिहन्त जैसा अपना स्वरूप जो समझना चाहे, वह समझ सकता है। अन्तर के स्वभाव की रुचि और महिमा आये बिना, जीव उसकी प्राप्ति का प्रयत्न नहीं करता। अरिहन्त जैसा अपना स्वरूप जो प्राप्त करना चाहता है, वह अवश्य प्राप्त कर सकता है। उस स्वरूप प्राप्ति के लिये अन्तर्मुख दशा का अपूर्व प्रयत्न चाहिए।

☞ हे जीव! तुझे तेरा अच्छा करना है न ?...तो इस जगत में तू यह ढूँढ निकाल कि जगत् में सबसे अच्छा किसने किया है ? पूर्ण हित किसने प्रगट किया है ?...

अरिहन्त भगवन्त इस जगत् में सम्पूर्ण सुखी हैं, उन्होंने आत्मा का सम्पूर्ण हित किया है। अरिहन्त भगवान ने किस प्रकार आत्मा का हित

किया?.... पहले अपने आत्मस्वभाव को परिपूर्ण जानकर, उस स्वभाव के आश्रय द्वारा मोह का क्षय किया–इस प्रकार अरिहन्त भगवन्तों ने आत्मा का हित किया। अरिहन्त जैसे अपने आत्मस्वभाव को जाना और फिर उसमें लीन होकर मोह का क्षय करके वीतरागता और केवलज्ञान प्रगट किया; इसलिए वे अरिहन्त भगवन्त सुखी हैं।

☞ उनके आत्मा की वह केवलज्ञान दशा कहाँ से आयी ?

त्रिकाली द्रव्य–गुण का जो स्वभाव सामर्थ्य है, उसमें से ही वह दशा प्रगट हुई है।

हे जीव! तेरे द्रव्य–गुण में भी अरिहन्त भगवान जैसा ही स्वभाव सामर्थ्य है, उस स्वभाव की श्रद्धा–ज्ञान करके, तू उसमें स्थिरता कर तो तुझे तेरे द्रव्य–गुण में से केवलज्ञान और पूर्ण सुखमय दशा प्रगट होगी, यह आत्मा का हित करने का उपाय है।

दुनिया में अपना अच्छे में अच्छा करनेवाले तो भगवान अरिहन्त हैं, उन्हें ही तू तेरे आदर्शरूप में रख।

☞ अहो! जिन्हें मोह नहीं, अवतार नहीं, मरण नहीं, विकल्प नहीं, पर की उपाधि नहीं, भूख–प्यास नहीं, शोक नहीं, जिन्हें दिव्य केवलज्ञान और सम्पूर्ण अतीन्द्रिय सुख प्रगट हो गया है तथा जो कृतकृत्य हैं—ऐसे अरिहन्त भगवान ही आत्मा के दर्पण समान हैं। वे ही सच्चे आदर्शरूप हैं। उन अरिहन्त भगवान के स्वरूप को जानने से अपने स्वरूप का प्रतिबिम्ब ज्ञात होता है—इस प्रकार अरिहन्त भगवान जैसे अपने आत्मा को जानकर, उसे ध्याते–ध्याते जीव स्वयं भी मोहरूपी अरि को नाश कर अरिहन्त हो जाता है। यह अरिहन्त होने का उपाय! अनन्त तीर्थङ्करों ने यही उपाय किया है और दिव्यध्वनि में भी ऐसा ही उपदेश किया है।

उन अरिहन्त भगवन्तों को नमस्कार हो!

(प्रवचनसार, गाथा 80 पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन बिन्दु)

चैतन्य भगवान के दर्शन के लिए

आँगन कैसा हो ?

निश्चय अर्थात् सच्चा सम्यक्त्व किसे कहना ? जो सम्यक्त्व अनन्त काल से संसार में परिभ्रमण करनेवाले अनन्त जीवों ने कभी एक सैकेण्डमात्र भी प्राप्त नहीं किया, वह सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो ? – उसका उपाय यहाँ बतलाया जा रहा है। आत्मा का जैसा स्वभाव है, उसकी समझ करके, उसका अन्तर में घोलन करना ही सम्यग्दर्शन का उपाय है और वह प्रथम धर्म है।

शरीरादि परवस्तु और विकार ही मैं हूँ – ऐसा मानकर, जीव अपने ध्रुव चैतन्यस्वभाव को चूक जाता है, उसे भगवान, मिथ्यात्व अर्थात् अधर्म कहते हैं। उस विपरीतमान्यता का अभाव करके, ध्रुव चैतन्यस्वरूप आत्मा की प्रतीति करना ही सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन, कार्य है तो उसका उपाय क्या है ? यही कि स्वभाव सन्मुखता की रुचि करके उसका अन्तर्विचार करना ही सम्यग्दर्शन का उपाय है। जो शुद्ध आत्मस्वभाव की रुचि और लक्ष्य है, वही सम्यग्दर्शन का निश्चय उपाय है।

श्री सर्वज्ञदेव कहते हैं कि हम ज्ञानस्वरूप आत्मा है। अन्तर्मुख होकर स्वभाव का विश्वास करके, उसमें एकाग्र होने से हमारी पूर्ण शुद्ध रागरहित केवलज्ञानदशा प्रगट हुई है। तू भी हमारे जैसा आत्मा है और तुझमें भी हमारे जितनी ही परिपूर्ण सामर्थ्य है। हमारी अवस्था में से रागादि का अभाव हो गया है क्योंकि वह हमारा स्वरूप नहीं था; अतः तेरी अवस्था में जो मिथ्यात्व–रागादि हैं, वह तेरा भी स्वरूप नहीं हैं, अपितु तू भी विकाररहित शुद्ध चैतन्यस्वरूप है। इस प्रकार अपने परमार्थस्वरूप का अनुमान करके, उसकी रुचि कर – यही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का उपाय है।

शरीर–मन–वाणी इत्यादि तो जड़ हैं, अजीव हैं; वे आत्मा से भिन्न हैं – ऐसा दृष्टिगोचर होता है और क्रोधादि विकारीभाव तो नये–नये करे तो होते हैं, न करे तो नहीं होते – ऐसा अनुभव में आता है। पूर्व में काम–क्रोधादि की तीव्र विकारी वासना हुई हो, उसका वर्तमान ज्ञान में विचार

करने से उनका ज्ञान होता है परन्तु वह विकारी वासना वर्तमान में प्रगट नहीं होती; इसलिए वह विकारी वासना, आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं है; ज्ञान ही आत्मा का स्वरूप है। इस प्रकार अनुमान से आत्मा के स्वभाव को लक्ष्य में लेकर निर्णय करना, वह सम्यग्दर्शन का कारण है।

किसी को तीव्र क्रोधावेश में किसी की हत्या करने की वृत्ति उत्पन्न हुई और उसने दो-चार हत्याएँ कर डालीं; तत्पश्चात् जब वह वृत्ति रुक गयी, तब वह उसका पश्चाताप करता है। उस समय पूर्व में हत्या करने का जो क्रोध का वेग था, वह वर्तमान में नहीं आता, क्योंकि वह चैतन्य का स्वभाव नहीं है। देखो, यह तो तीव्र विकार की बड़ी बात की है। इसी प्रकार दूसरे भी पुण्य अथवा पाप के जो विचार आते हैं, वे दूसरे क्षण मिट जाते हैं; इसलिए वे मेरा स्वरूप नहीं हैं। मैं विकार का ज्ञान करनेवाला स्वयं विकाररहित ज्ञानस्वरूप हूँ - ऐसा पहले अनुमान करना चाहिए। वह अनुमान भी यथार्थ है, उसमें अन्तर नहीं पड़ता - ऐसा स्वभाव का अनुमान किया, वही सम्यग्दर्शन का उपाय है।

अहो! अनन्त काल में चैतन्य का शरण कौन है? यह जीव ने कभी विचार ही नहीं किया है। बाहर में कोई पदार्थ आत्मा को शरणरूप नहीं है, शरीर भी शरणरूप नहीं है। जिसने चैतन्यतत्त्व की अन्तर शरण चूक कर, बाहर में शरण मानी है, वह मरणकाल में अशरणरूप होकर मरता है। ध्रुव-चैतन्यस्वरूप को जाने बिना किसकी शरण में शान्ति रखेगा? अरे भाई! क्या ऐसा ही स्वरूप होगा? क्या कोई शरणरूप वस्तु नहीं होगी? अन्तर में चैतन्यतत्त्व शरणभूत है, उसका लक्ष्य कर।

जिसे अपूर्व धर्म करना हो, वह जीव, कुदेवादि की मान्यता छोड़कर पहले तो आत्मस्वभाव जैसा है, वैसा ज्ञान में विकल्पसहित निर्णय करता है; तत्पश्चात् अन्तरस्वभाव सन्मुख होकर निर्विकल्प अनुभव प्रगट होने पर विशेष दृढ़-निर्णय होकर सम्यक्प्रतीति प्रगट होती है। इसमें अन्तर में आत्मा के विचार की जो क्रिया है, ज्ञानी को उसका माहात्म्य नहीं आता। पहले नव तत्त्वों के रागमिश्रित विचार बिना, सीधे एक आत्मा के अनुभव

में नहीं आया जा सकता तथा एक अभेद आत्मा के अनुभव में यह नव तत्त्व के विकल्प सहायकरूप नहीं हैं। वर्तमान ज्ञान की दशा, अखण्ड चैतन्य के सन्मुख होकर, उसके ज्ञानपूर्वक आत्मस्वभाव की निर्विकल्प श्रद्धा होना ही निश्चयसम्यग्दर्शन है - ऐसा सम्यग्दर्शन प्रगट करने के जिज्ञासु को नव तत्त्व का ज्ञान कैसा होना चाहिए? यहाँ उसकी बात करते हैं।

मैं जीव हूँ, शरीर इत्यादि अजीव हैं; दया-दान-व्रत इत्यादि भाव पुण्य हैं। पुण्य है, वह जीव नहीं है और जीव है, वह पुण्य नहीं है। अजीव से जीव भिन्न है। इस प्रकार नव तत्त्व अभूतार्थनय से हैं, उन्हें ज्यों का त्यों जानना चाहिए। देखो, इतना जानना भी अभी कोई धर्म नहीं है। धर्म तो अन्तर में भेद का लक्ष्य छोड़कर, एकरूप परमार्थस्वभाव के अनुभव से होता है परन्तु इससे पूर्व उपरोक्त कथनानुसार नव तत्त्व के विचाररूप शुभभाव की प्रवृत्ति आये बिना नहीं रहती है।

अहो! जीव ने कभी अपनी आत्मा की दरकार नहीं की है। जैसे, बैल और गधे अपना सम्पूर्ण जीवन भार खींच-खींचकर पूरा कर देते हैं; उसी प्रकार बहुत से जीव तो यह मनुष्यभव प्राप्त करके भी व्यापार-धन्धा और रसोई इत्यादि की मजदूरी कर-करके जीवन गँवा देते हैं। कोई भी पर का तो कुछ कर ही नहीं सकता, व्यर्थ ही पर का अभिमान करता है परन्तु आत्मा कौन है? और उसका स्वरूप क्या है? इस बात का कभी अन्तरङ्ग में विचार नहीं करता।

मैं तो त्रिकाल ज्ञानस्वरूप जीवतत्त्व हूँ और शरीरादि अजीवतत्त्व हैं; दोनों तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। बाहर में पैसा इत्यादि वस्तुएँ लेने-देने की अथवा रसोई करने की क्रिया जड़ की है, वह मैं नहीं कर सकता हूँ; मैं तो जाननहार तत्त्व हूँ। जीव और अजीव सदा भिन्न हैं। इस प्रकार नव तत्त्व के यथार्थ विचार करना भी अभी व्यवहारसम्यक्त्व है और नव तत्त्व के भेद के विकल्परहित एक चैतन्यस्वरूप आत्मा की श्रद्धा करके अनुभव करना, वह परमार्थ सम्यग्दर्शन है। राजा श्रेणिक को ऐसा सम्यक्त्व था, उसके फल में संसार का नाश करके वे आगामी चौबीसी में पहले तीर्थङ्कर

होकर, उसी भव से मुक्ति प्राप्त करेंगे। यद्यपि उन्हें व्रतादिक नहीं थे, तथापि यहाँ कहा गया वैसा आत्मा का भान था अर्थात् सम्यग्दर्शन था; इस कारण वे एकावतारी हुए हैं।

तीर्थ अर्थात् तिरने का उपाय। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही तिरने का उपाय है और उसकी प्रवृत्ति में नव तत्त्व की श्रद्धा इत्यादि निमित्तरूप है। वह व्यवहारश्रद्धा कोई मूलस्वरूप नहीं है, वह स्वयं तीर्थ अथवा मोक्षमार्ग नहीं है परन्तु वह व्यवहारश्रद्धा, परमार्थ में जाने पर बीच में आये बिना नहीं रहती।

इस जगत् का कर्ता कोई ईश्वर है अथवा सब मिलकर एक ब्रह्मस्वरूप ही है - इत्यादि कथनरूप कुतत्त्वों की श्रद्धा छूटकर श्री सर्वज्ञदेव द्वारा कथित नव तत्त्वों को लक्ष्य में लेना, वह व्यवहारश्रद्धा है; उसमें अभी रागपरिणाम है और उस राग से रहित होकर स्वसन्मुखरूप से अभेद आत्मा की प्रतीति करना, वह परमार्थ सम्यग्दर्शन है और वही धर्म है।

प्रश्न - मरण के काल में ऐसी प्रतीति करे तो?

उत्तर - भाई! अभी भी आत्मा के भान बिना तू प्रतिक्षण भावमरण ही कर रहा है; इसलिए उस भावमरण से बचने के लिए आत्मा के स्वभाव की पहचान कर।

श्रीमद् राजचन्द्रजी कहते हैं कि —

तू क्यों भयङ्कर भावमरण प्रवाह में चकचूर है!

भाई! मैं पर का कर्ता हूँ और विकल्प से मुझे लाभ होता है — ऐसा मानकर, इस विपरीतमान्यता से तेरा आत्मा प्रतिक्षण भयङ्कर भावमरण कर रहा है। यदि तुझे उस भावमरण से बचकर अपनी आत्मा का जीवन प्राप्त करना हो तो चैतन्यस्वरूप आत्मा की प्रतीति कर। इस चैतन्य की प्रतीति के बिना चैतन्य जीवन नहीं जिया जा सकता और भावमरण से नहीं बचा जा सकता।

व्यवहारसम्यक्त्व में तो भेद से नव तत्त्व की श्रद्धा है और अभेद परमार्थ सम्यक्त्व में तो एकरूप अभेद आत्मा की ही प्रसिद्धि है। आत्मख्याति, वह निश्चयसम्यक्त्व का लक्षण है।

हे भाई! तुझे भगवान के समीप आना है या नहीं? तुझे चैतन्य भगवान का साक्षात् दर्शन करना है या नहीं? तो पहले तुझे व्यवहारश्रद्धा एकदम सही करनी पड़ेगी। चैतन्य भगवान के दर्शन करने में पहले द्वारपालरूप व्यवहारश्रद्धा आती है परन्तु यदि उस द्वारपाल के पास ही रुक जाएगा तो तुझे चैतन्य भगवान के दर्शन नहीं होंगे। प्रथम, नव तत्त्व को भलीभाँति जानकर, एक अभेद आत्मा के स्वभावसन्मुख अन्तर झुकाव करके, प्रतीति करने से चैतन्य प्रभु के दर्शन होते हैं; वह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन द्वारा उस चैतन्य भगवान के दर्शन करते हुए, भव का अन्त आ जाएगा। इस चैतन्य भगवान के दर्शन किये बिना, भव का अन्त नहीं आ सकता है।

जो जीव, नव तत्त्व के ज्ञान में भी गड़बड़ी करता है, वह तो अभी चैतन्य भगवान के आँगन में भी नहीं आया है; उसे चैतन्य भगवान के दर्शन नहीं हो सकते हैं। पहले रागमिश्रित विचार से जीव-अजीव को भिन्न-भिन्न मानना, वह चैतन्य भगवान का आँगन है और अभेदस्वरूप की रागरहित अनुभवसहित प्रतीति करना, वह चैतन्य भगवान के साक्षात् दर्शन है, वह निश्चय-सम्यग्दर्शन है।

नव तत्त्व में तीसरा पुण्यतत्त्व है। वह पुण्यतत्त्व भी जीव को शरणभूत नहीं है। जीवतत्त्व, नित्य ध्रुवरूप है और पुण्यतत्त्व क्षणिक विकार है। पुण्य के आधार से जीवतत्त्व नहीं है। जीवतत्त्व और पुण्यतत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। त्रिकाली जीवतत्त्व, वह पुण्य का कारण नहीं है। यदि त्रिकाली तत्त्व, पुण्य का कारण हो तो पुण्य का अभाव कभी नहीं होगा। पुण्यतत्त्व स्वयं जीव नहीं है और जीवतत्त्व, वह पुण्य नहीं है। इस प्रकार दोनों तत्त्वों का भिन्न-भिन्न स्वरूप जानना चाहिए।

चैतन्यदेव का सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिए पहले द्वार के रूप में अर्थात् निमित्तरूप में व्यवहाररूप में नव तत्त्व की श्रद्धा होती है, तथापि परमार्थ सम्यग्दर्शन तो एक अभेद तत्त्व की श्रद्धा से ही होता है, व्यवहारश्रद्धा तो वारदान के समान है; मूल वस्तु तो अन्दर में अलग है।

पुण्यभाव, वह त्रिकाली आत्मा नहीं है। यदि पुण्यभाव से आत्मा का प्रगट होना माना जाए तो जीव और पुण्यतत्त्व अलग-अलग नहीं रहते और

त्रिकाली जीवतत्त्व को पुण्य का कारण मानें तो भी जीव और पुण्यतत्त्व अलग नहीं रहते। दया, दान, पूजा, भक्ति, तीर्थयात्रा, ब्रह्मचर्य इत्यादि शुभपरिणाम हैं, वह पुण्यतत्त्व है। यदि वह पुण्यतत्त्व, आत्मा हो तो आत्मा से उसकी भिन्नता निश्चित नहीं हो सकती और नव तत्त्व भी नहीं रहते है। जीव में जीव है और पुण्य में पुण्य है; जीव में पुण्य नहीं, पुण्य में जीव नहीं है। इस प्रकार प्रत्येक तत्त्व का अपना भिन्न-भिन्न लक्षण है। नव तत्त्वों का ऐसा निर्णय करना, वह व्यवहारसम्यक्त्व है।

पुण्यतत्त्व, वह आत्मा नहीं है और पुण्यतत्त्व, वह पाप भी नहीं है। दया, दान, पूजा, भक्ति इत्यादि के भाव, वह पुण्यतत्त्व है, वह कोई पाप नहीं है तो उन दया-पूजादि के भाव को पाप मनवानेवाले को तो नव तत्त्व की व्यवहारश्रद्धा नहीं है। अन्तरस्वभाव का निर्णय करने के बीच में नव तत्त्व की श्रद्धा का विकल्प आये बिना नहीं रहता है। अज्ञानी लोग ऐसा मानते और मनवाते हैं कि धर्म से धन, धन से धर्म होता है। वस्तुतः उन्हें जीव और अजीव तत्त्व की श्रद्धा नहीं है। धर्म का सम्बन्ध धन के साथ नहीं, किन्तु चैतन्य के साथ है। धन तो अजीवतत्त्व है। क्या उस अजीव से जीव को धर्म होता है ? धन से धर्म तो नहीं होता, किन्तु धन से पुण्य भी नहीं होता। धन तो जड़तत्त्व है और पुण्य तो जीव का मन्द कषायभाव है, यह दोनों भिन्न हैं। ऐसा होने पर भी जो जीव, पैसे से धर्म मानता है अथवा पैसे से पुण्य या पाप मानता है, उसे व्यवहारश्रद्धा भी सच्ची नहीं है।

श्री आचार्यदेव तो आत्मा की परमार्थ श्रद्धा करवाना चाहते हैं। अभी नव तत्त्व जैसे हैं, वैसे विकल्प से मानें, परन्तु नव के भेदरहित एक परमार्थ आत्मा को श्रद्धा का विषय नहीं बनावे, वहाँ तक सम्यक्त्व नहीं होता है।

जिनमन्दिर में भगवान के समीप हाथ जुड़ते हैं, शरीर नमता है अथवा भाषा बोली जाती है, वह जड़ की किया है; उस जड़ की क्रिया के कारण पुण्य नहीं है और पुण्य से धर्म नहीं है। शुभभाव से पुण्य है और अन्तर में परमार्थस्वभाव के श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र से धर्म है। अरे! जैन कहलाने और साधु नाम धरानेवालों को भी अभी नव तत्त्व के भाव का भी पता नहीं होता; अतः वास्तव में उन्हें जैन नहीं कहते।

पुण्य और पाप, वह वर्तमान क्षणिक विकारीदशा है और जीव तो त्रिकाली तत्त्व है। जड़ से पुण्य-पाप नहीं हैं तथा त्रिकाली जीवतत्त्व भी पुण्य-पाप का कारण नहीं है। यदि त्रिकाली जीवतत्त्व में पुण्य-पाप हो तो उनका कभी अभाव नहीं हो सकता। इस प्रकार जीवतत्त्व में पुण्य नहीं है तथा अजीवतत्त्व में भी पुण्य नहीं है; पुण्य स्वतन्त्र है, क्षणिक विकारीदशा है। यह सब शुद्धनय का विषय नहीं, अभूतार्थनय का विषय है - ऐसी नव तत्त्व की श्रद्धा, वह व्यवहारसम्यक्त्व है।

देखो, अभी तो धर्म के आँगन में आने पर व्यवहारश्रद्धा में भी इतना स्वीकार आ जाता है, फिर एक शुद्ध आत्मा के सन्मुख होकर अनुभव करने से सम्यक्प्रतीतिरूप धर्म प्रगट होता है।

चौथा, पाप तत्त्व है। जगत् तो परजीव के मरने से अथवा शरीर की क्रिया से पाप मानता है परन्तु वह वास्तव में पाप नहीं है। पाप तो जीव का कलुषितभाव ही है। अजीव में पापभाव नहीं है; पापभाव तो जीव की क्षणिक विकारी अवस्था है। जीव की अवस्था को छोड़कर कहीं बाहर में तो पाप रहता ही नहीं। पुण्य-पाप इत्यादि तत्त्व, क्षणिक अवस्था में हैं अर्थात् वर्तमान अवस्थादृष्टि से देखने पर यह नव तत्त्व विद्यमान हैं, इन्हें जानना चाहिए।

कोई कुदेवादि को मानता हो और कुव्यवहार में भटकता हो, उससे छूटने के लिए और सच्चे व्यवहार में आने के लिए यह नव तत्त्व की श्रद्धा काम की है किन्तु नव तत्त्व तो भेददृष्टि है; इसलिए इनके लक्ष्य से परमार्थ सम्यक्त्व नहीं होता है। अभेददृष्टि में तो अकेला भूतार्थ आत्मा ही है, उसकी प्रतीति ही परमार्थ सम्यक्त्व है। जिसे ऐसा सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिए चैतन्य के अन्तर में ढलना हो, उसे पहले ऐसी नव तत्त्व की व्यवहारश्रद्धारूप आँगन में आना पड़ेगा।

जिसने वास्तव में ऐसा माना है कि पुण्य से पैसा प्राप्त होता है, उसने पुण्य और अजीव को एक माना है तथा पैसे से धर्म होना माननेवाले ने अजीव और धर्म अर्थात् संवरतत्त्व को एक माना है तथा पुण्य से धर्म माननेवाले ने भी पुण्य और संवरतत्त्व को एक माना है - यह सभी

विपरीतमान्यताएँ हैं। जिसे नव तत्त्व की ठीक -ठीक श्रद्धा भी नहीं है, उसका तो आँगन भी साफ नहीं है और उसे चैतन्य के घर में प्रवेश नहीं होता है अर्थात् सम्यग्दर्शन नहीं होता है; इसलिए नव तत्त्वों को ज्यों का त्यों मानना चाहिए। यह चैतन्य स्वभाव के दर्शन के लिए आँगन है। ●

प्रवेश प्रारम्भ

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय

जैनदर्शन के पाठ्यक्रम

प्रवेश प्रारम्भ

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय में जैनदर्शन में विभिन्न नियमित पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं। इस हेतु पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर और तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़ एवं इण्टरनेशनल स्कूल फॉर जैन स्टडीज, नयी दिल्ली का इसमें सहयोग है। जैन शिक्षा के सन्दर्भ में इनका काफी अनुभव है। पाठ्यक्रम की जानकारी निम्न हैं—

पाठ्यक्रम (नियमित)	अवधि	योग्यता
सर्टिफिकेट	6 महीने	10
डिप्लोमा	1 साल	10
बी.ए.	3 साल	10+2
बी.ए.(हिन्दी/अंग्रेजी/संस्कृत) जैनदर्शन के साथ	3 साल	10+2
बी.कॉम. जैनदर्शन के साथ	3 साल	10+2
एम.ए.	2 साल	बैचेलर
पीएच.डी.	3-5 साल	मास्टर

प्रवेश के लिए सभी पाठ्यक्रमों में 45% और पीएच.डी. के लिए 55% अंक अनिवार्य हैं।

सर्टिफिकेट कोर्स की फीस रु. 3,000 डिप्लोमा / बी.ए. रु. 6,000 प्रतिवर्ष, बी.ए. एवं बी.कॉम. जैनदर्शन के साथ रु. 12,000 प्रतिवर्ष, एम.ए. रु. 10,000; पीएच.डी. रु. 40,000। परीक्षा व फार्म फीस अतिरिक्त रु. 1,000/- छात्रवृत्ति की सम्भावना—कुछ संस्थाओं/व्यक्तियों ने नियमित पाठ्यक्रम के अन्तर्गत प्रवेश लेनेवाले को छात्रवृत्ति देने की सहमति दी है। हिन्दी या अंग्रेजी माध्यम में से एक विकल्प चुन सकते हैं। अधिक जानकारी के लिए बेवसाईट देखें।

सम्पर्कसूत्र :

दर्शन विज्ञान केन्द्र, ***मङ्गलायतन विश्वविद्यालय***,
33 माइलस्टोन, अलीगढ़-मथुरा हाईवे, बेसवाँ, अलीगढ़ - 202145 (U.P.)
Mob. No. 07351002565 / 08476007937
email : jl.jain@mangalayatan.edu.in, cps@mangalayatan.edu.in
website : www.mangalayatan.edu.in

पण्डितजी की डायरी से

शास्त्राभ्यास कैसे करना ?

प्रश्न 1. शास्त्राभ्यास किसलिए और कैसे करना चाहिए, कैसे नहीं ?

उत्तर – एक कारीगर ने तीन पुतलिया बनाई, तीनों देखने में एक सी लगती थी, वह उनको बेचने के लिए राजा के दरबार में पहुँचा। राजा ने मन्त्री से तीनों का मूल्य लगाने के लिए कहा, किन्तु मन्त्री की समझ में नहीं आया। उसने राजा से आठ दिन का समय माँग लिया और कहा कि आठ दिन बाद इन पुतलियों की कीमत बताई जाएगी। मन्त्री को परेशान होते हुए आज सातवाँ दिन हो गया, उसे कुछ समझ में नहीं आया।

उसने एक सलाई एक पुतली के कान में डाली, वह आर-पार निकल गयी; दूसरी के कान में डाली तो वह मुँह से निगल गयी; तीसरी के कान में डाली तो वह अन्दर ही समा गयी। मन्त्री बड़ा प्रसन्न हुआ।

राज दरबार में आकर मन्त्री ने तीसरी पुतली की कीमत एक लाख रुपया लगायी, बाकी दो की एक कानी फूटी कोड़ी भी नहीं। मन्त्री से यह बात स्पष्ट करने को कहा गया कि जब तीनों पुतलियाँ एक सी हैं, तब दो की कीमत कुछ भी नहीं, तीसरी की एक लाख – ऐसा क्यों ?

मन्त्री ने कहा — नम्बर एक पुतली से जो कुछ कहा जावे, यह तभी दूसरे कान से निकाल देती है और नम्बर दो की पुतली जो सुनती है, वह दूसरों को सुना देती है। नम्बर तीन पुतली जो सुनती है, अपने में पचा लेती है। यह तो हुआ दृष्टान्त। इसी प्रकार —

1. जो जीव, शास्त्र पढ़ता है, या सुनता है; इधर सुना-उधर निकाल दिया या पता ही नहीं क्या सुना या क्या पढ़ा ? – यह व्यर्थ है।

2. जो जीव, शास्त्र इसलिए पढ़ता या सुनता है कि मैं सुनकर दूसरों को बताऊँ, लोग मेरा मान / आदर करें तो वह भी व्यर्थ है।

3. जो जीव, शास्त्राभ्यास अपने कल्याण के लिए करता है; जो पढ़ता-सुनता है, उसे अपने जीवन में घटाता है, वह ही धन्य है।

जैसा, वस्तुस्वरूप है, वैसा का वैसा निर्णय करने से मन्दकषाय हो जाती है और विशेष पुरुषार्थ करें तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति भी हो जाती है; इसलिए शास्त्राभ्यास हमेशा अपने कल्याण के निमित्त ही कार्यकारी है।

मैं शास्त्राभ्यास करूँ, उसके बदले मुझे मान मिले और मेरी आजीविका चले – यह पापभाव है।

समाचार-दर्शन

अक्षय तृतीया पर्व सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : वर्तमान चौबीसी के आदि तीर्थङ्कर एवं तीर्थधाम मङ्गलायतन के मूलनायक भगवान श्री आदिनाथ का मुनि अवस्था में प्रथम आहारदान का पर्व अक्षय तृतीया विशेष उत्साहपूर्वक मनाया गया। इस अवसर पर सर्व प्रथम भगवान आदिनाथ की विशेष पूजन आयोजित की गयी। तत्पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का माङ्गलिक सी.डी. प्रवचन एवं पण्डित अरुणकुमार जैन अलवर द्वारा प्रासङ्गिक स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ। सायंकाल जिनमन्दिर में जिनेन्द्रभक्ति के आयोजनोपरान्त भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा एक विशेष गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें मङ्गलार्थी छात्रों ने अपने विचार व्यक्त किये। अक्षय तृतीया पर्व की सार्थकता पर पण्डित अशोक लुहाड़िया ने अपने विचार रखे। विदित हो कि अक्षय तृतीया पर्व वर्तमान काल में दान तीर्थ के प्रवर्तन का दिन माना जाता है।

पूज्य गुरुदेव की जन्मजयन्ती के अवसर पर

तीर्थधाम मङ्गलायतन : तीर्थङ्कर परमात्माओं एवं वीतरागी सन्तों के आत्महितकारी सन्देशों को अपनी स्वानुभवयुक्त वाणी से प्रसिद्ध करनेवाले परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की 124 वीं मङ्गलकारी जन्मजयन्ती दिनांक 11 मई को अत्यन्त उल्लासपूर्वक मनायी गयी। इस अवसर पर प्रातः काल जिनमन्दिर में भगवान सीमन्धरनाथ की विशेष पूजा आयोजित की गयी। पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का माङ्गलिक सी.डी. प्रवचन रखा गया। पण्डित अरुणकुमार शास्त्री ने अपने स्वाध्याय में गुरुदेवश्री के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला।

सायंकालीन कार्यक्रमों के अन्तर्गत जिनेन्द्रभक्ति एवं गुरुभक्ति का आयोजन किया गया। गुरुदेवश्री के प्रति हार्दिक श्रद्धासुमन अर्पित करने के उद्देश्य से एक विचारगोष्ठी आयोजित की गयी। जिसकी अध्यक्षता पण्डित अरुणकुमार शास्त्री, अलवर ने की; मुख्य अतिथि के रूप में श्री पवन जैन, अलीगढ़ उपस्थित थे। मङ्गलार्थी छात्रों एवं मङ्गलायतन के विद्वान पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सुधीर शास्त्री, पण्डित आशीष शास्त्री ने गुरुदेवश्री के सम्बन्ध में अपने भावपूर्ण विचार प्रस्तुत किये।

पण्डित कैलाशचन्द्र जैन द्वारा लिखित निम्न ग्रन्थों का प्रकाशन शीघ्र

अलीगढ़ : पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अनन्य भक्त, स्वर्गीय पण्डित कैलाशचन्द्र जैन की स्मृति में स्थापित **पण्डित कैलाशचन्द्र जैन फाउण्डेशन** के अन्तर्गत पण्डित कैलाशचन्द्र जैन ग्रन्थमाला के निम्न प्रकाशनों का पुनर्मुद्रण किया जा रहा है। इच्छुक आत्मार्थी, भाई-बहिन एवं मण्डल अपने यहाँ अपेक्षित प्रतियों के सम्बन्ध में निम्न पते पर पत्र-व्यवहार कर सकते हैं।

(1) जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग-1; (2) जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग-2 ; (3) जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग-3 ; (4) जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग-4 ; (5) जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग-5; (6) जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग-6।

(7) मङ्गल दैनन्दिनी; (8) मङ्गल पत्राञ्जलि; (9) मङ्गल देशना; (10) मङ्गल सम्बोधन।

सम्पर्कसूत्र : पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

—तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरा रोड, सासनी-204216

—'विमलांचल', हरिनगर, गोपालपुरी, आगरा रोड, अलीगढ़-202001

वैराग्य समाचार

खण्डवा : श्री विशाल एवं उनकी धर्मपत्नी श्रेया पञ्चरत्न खण्डवा का देह परिवर्तन हुआ है। विदित हो कि आप बाल ब्रह्मचारिणी आशाबहिन के भतीजे एवं श्री प्रकाशभाई पञ्चरत्न के पुत्र-पुत्रवधु थे। आपके सम्पूर्ण परिवार में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति अनन्य भक्तिभाव है।

सागर : श्री बाबूलाल जैन सिंघई का देह परिवर्तन हुआ है। आप पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य भक्त, स्वाध्यायी, आत्मार्थी थे।

कोलकाता : श्रीमती कंचनदेवी धर्मपत्नी श्री जुगराज कासलीवाल का देह परिवर्तन हुआ है। आप गुरुदेवश्री की अनन्य भक्त थीं।

लाम्बाखोह : श्री शान्तिलाल जैन ठोला का वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के स्मरणपूर्वक देह परिवर्तन हुआ है। आप वर्षों से स्वाध्याय आदि सत्कर्मों में संलग्न थे। बालकों को धार्मिक संस्कार प्रदान करने हेतु आपको विशेष अभिरुचि थी।

दिवंगत साधर्मीजन वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की आराधनापूर्वक आत्मश्रेय को प्राप्त करें, इस भावना के साथ तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार, संतृप्त परिजनों के प्रति अपनी हार्दिक संवेदनायें प्रेषित करता है।

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय

जैनदर्शन के विभिन्न पाठ्यक्रम एवं उनके प्रमुख विषय

मास्टर ऑफ आर्ट्स—जैनदर्शन (दो वर्ष)

जैन सिद्धान्त (जैन सिद्धान्त प्रवेशिका), तत्त्वार्थसूत्र, जैनों में गलत धारणाएँ (मोक्षमार्ग-प्रकाशक—सातवां अधिकार), गाथा समयसार

शुद्ध आत्मा एवं उसकी शक्तियाँ (समयसार परिशिष्ट), प्रवचनसार

कर्म के सिद्धान्त (गोम्मटसार), जैन-न्याय, नयचक्र, क्रमबद्धपर्याय

गोम्मटसार जीवकाण्ड, जैनधर्म का प्राचीन इतिहास, जैनदर्शन में गणित, प्रोजेक्ट वर्क /निजी अध्ययन

बेचलर ऑफ आर्ट्स—जैन-दर्शन (तीन वर्ष)

जैनदर्शन का परिचय (बालबोध पाठमाला—I, II, III के आधार पर), वीतराग-विज्ञान-I, II, III

जैन सिद्धान्त (जैन सिद्धन्त प्रवेशिका), तत्त्वज्ञान-I, II, छहढाला

मोक्षमार्गप्रकाशक, धर्म के दश लक्षण, ध्यान का स्वरूप

विश्व संरचना और जैन भूगोल, आचार्य कुन्दकुन्द (जीवन, उनकी रचनाएँ एवं महत्व)

विभिन्न दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, जैनधर्म का इतिहास और साहित्य, आत्मा और उसके गुणस्थान, संस्कृत व्याकरण

श्रावक एवं मुनिधर्म, तीर्थङ्कर महावीर, अनेकान्त वाद-स्याद्वाद, प्रोजेक्ट वर्क-निजी अध्ययन

बेचलर ऑफ आर्ट्स—जैनदर्शन सहित हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत (तीन वर्ष)

प्रत्येक सेमेटर में जैनदर्शन के दो विषय (उक्त विषयों में से) एवं अन्य तीन विषय हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत एजुकेशन व रिसर्च विभाग से।

बेचलर ऑफ कॉमर्स—जैनदर्शन सहित (तीन वर्ष)

प्रत्येक सेमेस्टर में जैनदर्शन के दो विषय (उक्त विषयों में से) एवं अन्य तीन विषय कॉमर्स विभाग से।

डिप्लोमा—जैनदर्शन (एक वर्ष)

जैनदर्शन का परिचय (बालबोध पाठमाला-I, II, III के आधार पर), वीतराग विज्ञान-I, II, III

जैन सिद्धान्त (जैन सिद्धान्त प्रवेशिका), तत्त्वज्ञान-I, II, छहढाला

प्रमाणपत्र—जैनदर्शन (छः महीने)

जैनदर्शन का परिचय (बालबोध पाठमाला-I, II, III के आधार पर), वीतराग विज्ञान-I, II, III

सम्पर्कसूत्र :

डॉ जयन्ती लाल जैन, निदेशक, दर्शन विज्ञान केन्द्र

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय, बेसवाँ, अलीगढ़

jl.jain@mangalayatan.edu.in Mob. No. +917351002565

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय

33rd Milestone, Aligarh-Mathura, Highway, Aligarh - 202145 (U.P.)

Mobile No. 08476007937